SWAR SINDHU: NATIONAL PEER-REVIEWED/REFEREED JOURNAL OF MUSIC
A UGC CARE LISTED JOURNAL
ISSN 2320-7175 (O) | VOLUME 12, ISSUE 03, DECEMBER, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org

शास्त्रीय संगीत में सौन्दर्य एवं रसानुभूति की प्रतीति

APARNA PANDEY[1], DR. SHWETA KUMARI[2]

[1]Research Scholar, Department of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
[2]Assistant Professor, Department of Vocal Music, Mahila Mahavidyalay, Banaras Hindu University, Varanasi

सार

भारतीय सौन्दर्य, पाश्चात्य सौन्दर्य की अपेक्षा अत्यधिक अन्तमुखी व आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सुन्दर वस्तु के सौन्दर्य में ईश्वरीय प्रेरणा व तेज के निहित होने का भाव समèवित है अतएव सौन्दर्य की साधना वस्तु अथवा कला के माध्यम से होती है जैसे की वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, नाट्यशास्त्रादि में सौन्दर्य के सिद्धान्त, लक्षण व गुणों का यथोचित वर्णन मिलता है। संगीत कला मुख्यत: सौन्दर्यानुभूति करने वाली कला है। इसका माध्यम मात्र ध्वनि है। परन्तु नृत्यादि को छोड़कर संगीत कला में रंजकता भी ऐसा गुण है, जो प्रत्येक अवस्था में आत्मविभोर कर देता है और यह संगीत का सौन्दर्य ही रसानुभूति तथा सौन्दर्य दोनों का पर्यायवाची है। सांगीतिक सौन्दर्य सृष्टि का आधार स्वर, ताल और लय है। सौन्दर्योत्पत्ति के ये त्रिदेव माने गये है। स्वर संगीत का वह पहलू है जिसका सीधा सम्बन्ध आध्यात्म और सौन्दर्य से है। संगीत के सप्त स्वरों की साधना में जब साधक तन्मय हो जाता है तो उसे आध्यात्मिक सौन्दर्य की अनुभूति होती है। स्वर साधना से स्वर और ब्रह्म में जब साधक एकाकार हो जाता है, तब उसे ऐसे आनन्द की अनुभूति होती हैं, जिसमें सांसारिक विद्वेशों, क्रियाकलापों के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।

सूचक शब्द- *संगीत, सौन्दर्य, रस, राग, आनन्द, स्वर, कला।*

विषय प्रवेश

भारतीय संस्कृति का जीवन्त परम्पराओं व उनके अनुरंक्षण में संगीत कला की महति भूमिका रही है। संगीत ललीत कला के साथ -साथ ही इसका मुख्य ध्येय सौन्दर्यानुभूति से कला रसिको के मन में आनन्द की प्रतीति करना है। जिस प्रकार प्रत्येक कला के कतिपय आधार भूत तत्वों पर का समावेश कलाकार के कृतित्व व कल्पनाशीलता होने से वह कला विशेष अस्तित्व में आधार सौन्दर्य तत्वों की अनुभूति कराती है। ठीक उसी प्रकार संगीत कला में भी कुछ ऐसे ही आधार भूत व मौलिक तत्वों के फलस्वरुप संगीत में रंजकता, भाव प्रवणता व सौन्दर्य बोधक तत्व प्रतीत होते है जिससे नवीन भावों का प्रकटीकरण होती है तथा इन्हीं भावों से विभिन्न रसों की सृष्टि व संगीत कला में सौन्दर्य रस बोधक तत्व दृष्टिगत होते है।

कलाओं का उद्गम सौन्दर्य की ही मूल भूत प्रेरणा से हुआ है। कुछ कलाओं में लालीत्य बोधक तत्वों के होने के फलस्वरुप इसे ललित कला की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार ललित कलाएँ मानव के सौन्दर्य बोध की प्रतीक मानी जाती है। ललित कलाओं ने आनन्द को चिरन्तरता प्रदान कर वाणी को गति दी और साथ ही अंतर निहित भावनाओं को नाद के सहारे अभिव्यक्त किया। वह नाद चाहे कण्ठ या वाद्य यंत्र द्वारा उत्पन्न हुआ है। सौन्दर्य ही आनन्द का जनक है और कलाएँ आनन्द की जननी है तथापि प्रत्येक कला के कुछ आधार भूत तत्वों को समावेश कलाकार के कृतित्व में होने से वह कला विशेष अस्तित्व में आती है व सौन्द्रेयात्पादन करती है। ठीक उसी प्रकार संगीत कला के भी कुछ ऐसे ही आधार भूत व मौलिक तत्व (राग, लय, ताल, काकु भेद इत्यादि) होते है। किसी भी कलाकृति के सौन्दर्य को इन्द्रियों एवं आत्मा द्वारा ग्रहण करके जब मानव आनन्द प्राप्त करता है; तब उसे सौन्दर्यानुभूति कहा जाता हैं अर्थात कलाकार कलागत सौन्दर्य की भावना ही सौन्दर्यानुभूति है।[1] इस प्रकार कलाकार के द्वारा अवधानपूर्वक एवं कार्य कुशलता से निर्मित सुखद सुन्दर और आनन्दप्रद कृति को ही कला कहा गया है। क्योंकि मन से किया गया संगीत का सृजन ही आनन्दानुभूति की उत्पत्ति का कारण होता है। 'अनुभूति से अभिव्यंजना, अभिव्यंजना' से रसोहेक, रसोहेक से सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्यानुभूति से चिर आनन्द की प्राप्ति करना ही कला का उद्देश्य है।[2]

1 डॉ0 बढ़ला क्यूटी, भारतीय संगीत शास्त्र की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ0 67

2 जैन विजय लक्ष्मी, संगीत दर्शन, पृ0 7

सौन्दर्य शब्द हिन्दी में एस्थेटिक्स का पर्याय बनकर प्रचलित हुआ कहा जाता है कि एस्थेटिक्स शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है, जिसका मूल रूप ग्रीक शब्द Atotiko's है जो बाद में Asthsis बनकर उपस्थित हुआ।[1] 'इस शब्द का अर्थ है' इन्द्रिया सुख की चेतना' यही शब्द बाद में 'ऐस्थेटिक्स' बन गया। कहा जाता है कि कला और सौन्दर्य का संबन्ध बहुत प्राचीन है। सौन्दर्य का गुण आनन्द है और उसके आस्वादन की चरमोत्कर्ष परिणीति ही रस है। सौन्दर्य का प्रकृति और प्रकृति से प्राप्त प्रेरणा के आधार पर मानव- निर्मित कला से भी बहुत गहरा संबंध है। यह कहा जा सकता है कि कला के बिना सौन्दर्य का निर्माण सम्भव नहीं है। अत: सौन्दर्य कला का धर्म है, जो सुखद या दुखद अनुभूति का कारण बनता है। सौन्दर्य का आविभीव प्रशिक्षण, साधना, अभ्यास, चिन्तन, मनन तथा प्रेमभाव इस सभी के योगदान से ही होता है। प्रथम दृष्टि में कला अपने सौन्दर्य से इन्द्रियों को प्रभावित करती है और सुखद प्रतीत होती है तदुपरान्त वह मन की गदराई तक आनन्द प्रदान करती है और आत्म-विभोर कर देती है। कला सौन्दर्य में ही उसकी आनन्द प्रदायिनी शक्ति निहित होती है।

कलाओं का सर्वप्रथम तत्व है - सौन्दर्य सम्पन्न होना। संगीत एक ललित कला है अर्थात् सुन्दर और मनोहर कला है। ''संगीत के न मोहयते'' अर्थात् संगीत किसको मोहित नहीं करती। सौन्दर्य प्रेम मनुष्य का नैसर्गिक गुण है। अनेक कलाओं का सृजन तथा विकास भी मनुष्य के सौन्दर्य चेतना का परिणाम है। देखा जाए तो सभ्यता का विकास भी मनुष्य के सौन्दर्य साधना का परिणाम है। प्रत्येक कला के माध्यम व उपकरण भिन्न-भिन्न होते है। उनकी प्रयोग विधि में क्रम नियम आदि होते है। कला की शास्त्रीय व परम्परागत सीमाएँ होती है। साथ ही कलाकार को अपनी कल्पना आदि को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता भी होती है परन्तु सारे विधान का लक्ष्ण है - सौन्दर्य की उपलब्धि।

स्वरों के उतार, चढ़ाव एवं मधुर मूच्छनाओं के हम संगीत कहते है। ये हवा में पैदा होने वाले सूक्ष्म स्पंदन है। कोई भी संस्कृति मानव इनको ग्रहण और आत्मसात करने की क्षमता रखता है। उसकी सूक्ष्म ग्राहिणी बुद्धि और संवेदनशीलता इस क्षमता के आधार पर है। यह क्षमता सहज है परन्तु अध्ययन से इसमें निखार आता है। इस क्षमता से मनुष्य संवेदनों को आत्मसात् करके अद्भुत आनन्द और आलोक का अनुभव करता है। इस अनुभव का नाम 'रस' है और जिन सूक्ष्म स्पंदनों से रसानुभूति होती है, वह सौन्दर्य है। यह सौन्दर्य मानव- मूल्य हैं क्योंकि रसानुभूति से उसका जीवन समृद्ध होता है।

यद्यपि संगीत का सौन्दर्य वस्तुत: राग सौन्दर्य ही है। संगीत का सौन्दर्य नाद और लय के सूक्ष्म तत्वों पर आधारित होता है। यह तत्व संगीत में प्राण की प्रतिष्ठा करते है। श्रुति को स्वर, स्वर को राग और राग को रस में परिणत करके उत्साह, विनोद, मादकता, करुणा, चिन्ता एवं इत्यादि को उभारकर प्राणी को तन्मय कर देते है। संगीत की सौन्दर्य शक्ति के द्वारा प्राणी के स्थाई भावों को जानकर उसे रस में मगन कर देना कलाकार का लक्ष्य होता है। संगीत का सौन्दर्य राग, ताल, लय और गीत पर निर्भर तो होता ही है लेकिन काकु भेद भी उसका महत्वपूर्ण अंग है। स्वरों को विशिष्ट गति देकर समुचित प्रभाव उत्पन्न करने की दृष्टि से उन्हें ऊँच-नीचता के साथ प्रदर्शित करना काकु भेद कहलाता है इसलिए किसी एक ही स्वर समुदाय अथवा एक ही शब्द के उच्चारण द्वारा संगीतकार श्रोता के हृदय में विभिन्न भाव उत्पन्न करनें में सफल रहता है। वर्तमान में संगीत यानि भारतीय संगीत का जो भी रूप हम देखते है; वह सब वास्तव में घरानों द्वारा उनकी परम्पराओं के कारण ही सार्थक हुआ है, इन्हीं घरानों ने कला के विकास में सुंदरता, समृद्धता, विविधता, रचनात्मकता के साथ-साथ विविध प्रकार के आयाम देने का महत्वपूर्ण कार्य किया है, जो प्रमाणित आज हमारे नेत्रों के समक्ष है। घरानेदार गायकी हिन्दुस्तानी संगीत की सुंदरता की प्रमुख विशेषता है।

संगीत में राग का उद्देश्य की कल्पना द्वारा रस निर्माण करना है। संगीतात्मक आनन्द और निर्माण क्षमता कल्पनाशाक्ति की ही देन है। राग स्वरुप की सूक्ष्मता का सम्बन्ध कल्पनाशक्ति की तरलता के साथ बताते हुए ख्याल गायन में कल्पना-शक्ति के अत्यन्त अवसर की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि ख्याल में आकर्षकता को बढ़ाने के लिए स्वर विस्तार खटका, मीड़, तान, गमक, कंपन आदि युक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इसमें कल्पना की प्रचुरता, रचना की आकर्षकता, रसास्वाद में आत्म निर्भरता होती है। रमणीय तत्वों का मिश्रण होने से रसिको को कलाकार की गायन शैली से इसका अनुभव मिलता है। भारतीय संगीत में राग सौन्दर्य की समस्त सौन्दर्य धारणा में समाहित है। जिस प्रकार कलाकृति कलाकार एवं कला रसिक एक ही स्तर की अनुभूति हो उसी प्रकार राग का प्रस्तुतिकरण कलाकार की क्षमता एवं

1 भटनागर मधुरलता, भारतीय संगीत का सौन्दर्य विधान, पृ0 26

कला रसिक का आस्वादन की क्षमता एक ही समान होनी चाहिए। सौन्दर्य के परिपाक हेतु कलाकारी के उचित एवं पर्याप्त संगीत साधना, स्वर लगाव, सुरीला वाद्य, समय और श्रोता के अनुसार राग एवं ताल का चुनाव व रचना आकर्षत होनी चाहिए। रचना के छंद अनुकूल होना चाहिए। संगीत के सम्बन्ध में संगीत के द्वारा जो भी आनन्द की प्राप्ति होती है। वह राग, ताल, गीत, रचना के शब्दों के अर्थ पर निर्भर होती है। कलाकार द्वारा प्रस्तुत संगीत से उत्पन्न आनन्द को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1 मानसिक 2. शारीरिक।

गायक या वादक के मन में राग का सूक्ष्म सौन्दर्य अमूर्त रूप में विद्यमान रहता है। राग का प्रस्तुतिकरण किसी भी गायक के अन्तर मन से अलग नहीं होता। उसी प्रकार श्रोता के सम्मुख राग सौन्दर्य के रूप में आते रहते है और स्थूल सौन्दर्य रचना के हर क्षण का सम्बन्ध श्रोता से होता है। भारतीय रागों में सौन्दर्य तीन बिन्दु है - श्रोताओं में उत्कंठा जाग्रत करना। अपेक्षित अवस्था तक विकसित करना। उत्कंठा का समापन करना।

राग प्रस्तुतिकरण में रागों की आलापचारी में उत्कंठा का उद्भव होता तथा मुखड़ा लेकर सम पर आने पर उत्कंठा का विसर्जन होता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार "शड्ज, मध्यम और पंचम स्वरों सौन्दर्य के उद्गम स्थल है तथा रिषभ, निषाद पर सौन्दर्य की उत्कंठा विसर्जन होता है इसी प्रकार ताल प्रदर्शन में तिहाई या उत्कंठा को जाग्रत करती है और सम पर ही उत्कंठा का विसर्जन हो एक अपूर्ण सौन्दर्य का सृजन होता है। आनन्द प्राप्ति से संगीत में सौन्दर्य एवं रस का सृजन होता है। आचार्य भरत ने सौदंर्य एवं रस को ब्रह्मानंद सहोदर कहा है।

'रस' शब्द का भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रत्येक क्षेत्र में चरम विकास का घोतक है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'रस' शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट तत्व को प्रतिपादित करता है। 'संगीत के क्षेत्र में कर्णेन्द्रिय द्वारा प्राप्त 'आनन्द' का नाम रस है। आध्यात्म के क्षेत्र में स्वयं परमात्मा को ही रस अथवा रस को ही परमात्मा घोषित किया गया है-'रसोवैस:' अर्थात् रस ही परमात्मा है इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी काव्य के आस्वादन से प्राप्त अनुभूति को ही रस की संज्ञा दी गयी है। रस सिद्धान्त के समर्थक काव्य का लक्ष्म पाठक को आनन्दानुभूति प्रदान करना स्वीकार करते है। इस काव्यजन्य आनन्द का ही दूसरा नाम 'रस' है।[1] रस सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य भरत मुनि माने जाते है। उन्होंने अपने नाट्य शास्त्र में रस के विभिन्न अवयवों का विवेचन किया है-

विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद् रस निष्पति:।[2]

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में रसादि और सातवें अध्याय में भावादि का निरुपण किया है। भरत ने रस का विवेचन नाटक के प्रसंग में किया है किन्तु सिद्धान्त निरुपण में नाटक वस्तुत: समस्त काव्य का प्रतिनिधित्व करता है। आचार्य भरत ने नाटक के तीन प्रमुख तत्व माने है -

वस्तु 2. नेता 3. रस।

इनमें रस तत्व को सर्वाधिक महत्व दिया है- न हि रसाड़ग्ते काश्चयदर्थ: प्रवर्तते।[3]

रस के भेदोपभेद

काव्यशास्त्र के प्रारम्भिक युग से लेकर आज तक विभिन्न प्रकार के वाद-विवाद के पश्चात् रसों को स्थायी रूप से दस भेदों में स्वीकार कर लिया जा सका। दस रस एवं उनका विवरण इस प्रकार है -

1 प्रो0 जौहरी रेनू, रस एवं सौन्दर्य, पृ0 44

2 प्रो0 शर्मा स्वतंत्र, सौन्दर्य, रस एवं संगीत, पृ0 85

3 वही, पृ0 85

- श्रृंगार- विभावानुभाव एवं संचारी भावों के संगोग से परिपक्व अवस्था में पहुँचा हुआ रति स्थायी भाव श्रृंगार रस में परिणत होता है। श्रृंगार शब्द दो शब्दों के मेल से बना है - श्रृंग + आर। श्रृंगार रस के दो भेद होते है - (अ) संयोग श्रृंगार तथा (ब) वियोग श्रृंगार।
- वीर रस- सहृदय सामाजिकों के हृदय में वासना रूप से विद्यमान उत्साह स्थायी भाव काव्यादि में वर्णित विभावानुभाव और संचारी भावों संयोग से उद्बुद्ध होकर रसावस्था में पहुँचकर आस्वाद योग्य बन जाता है, तब यह रस वीर रस कहलाता है। मनीषियों ने वीर रस के अनेक भेद किए है -(1) दयावीर (2) दानवीर (3) धर्मवीर (4) युद्धवीर।
- हास्य रस- साहित्य में हास्य रस का निस्पण सर्वाधिक क्लिष्ट कार्य होता है क्योंकि थोड़ी सी असावधानी से हास्य रस न रहकर फूहड़ कथन अथवा अनर्गल उक्ति मात्र रह जाता है। साहित्य में चमत्कारपूर्ण शिष्ट हास्य के लिए स्थान रहता है।
- रौद्र रस- रौह रस का स्थाई भाव क्रोध है। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से वासना रूप से सामाजिकों के हृदय में स्थित क्रोध स्थायी भाव आस्वादित होता हुआ रौद्र रस में परिणत हो जाता है।
- भयानक रस- विभावानुभाव और संचारी भावों के संयोग से जब सहृदय सामाजिकों के हृदय में वासना रूप से विद्यमान 'भय' स्थायी भाव उद्बुद्ध होकर रस रूप में परिणत होता है तब वहाँ भयानक रस होता है।
- वीभत्स रस- घ्रणित वस्तुओं को देखकर अथवा सुनकर जुगुप्सा स्थायी भाव उद्बुद्ध होता है जो सम्बद्ध विभावानुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से परिपक्व अवस्था में पहुँचकर वीमत्स रस में पहुच जाता है।
- करुण रस- भावभूति करुण रस को ही एकमात्र रस मानते है - (1) स्वनिष्ठ (2) परनिष्ठ। स्वहानि या पाप क्लेशादि से उत्पन्न करुण स्वनिष्ठ और दूसरे के नाश, हानि, आदि से उत्पन्न करुण परनिष्ठ होता है। दृष्ट वस्तु, व्यक्ति की हानि अथवा नाश करुण रस की उत्पत्ति का निमित्त है। करुण रस एक व्यापक एवं तीव्र रस है।
- अद्भूत रस- अद्भूत रस का स्थायी भाव विस्मय है। आश्चर्यजनक व्यक्तियों, वस्तुओं, विचित्र दृश्यों एवं आलौकिक वस्तु या घटना के द्वारा अद्भूत रस की उत्पत्ति होती है। भरत के अनुसार अद्भूत रस दो प्रकार का होता है – 1. दिव्यदर्शनज 2. आनन्दज।
- शान्त रस- शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है। आचार्य विश्वनाथ, हेमचन्द्र आदि आचार्य 'शम' को शान्तरस का स्थायी भाव मानते है। पूर्व में शान्त रस को रस नहीं माना जाता था। किन्तु परवर्ती समस्त आचायोर्ं ने शान्तरस को पूर्णतया अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है।

उपर्युक्त लिखित परिभाषाओं के अनुसार अगर हम शास्त्रीय संगीत और रस का अन्तः सम्बन्ध स्थापित करके देखें तो किसी एक स्वर से तब तक भाव या रस की प्रतीति नही होती जब तब तक कि उसमें अन्य स्वरों का सहयोग न हों। जब अनेक स्वर मिलकर किसी धुन में बँध जाते हैं तो वह धुन रस का संचार करने में समर्थ होती है। इसी धुन को राग कहते हैं और यही शास्त्रीय संगीत में सौन्दर्य एवं रसानुभूति की प्रतीति हैं। मानव-जाति के अन्तःकरण में निवास करने वाली विशिष्ट या साधारण, भावनाओं के सतोगुण प्रधान परमोत्कर्ष को ही शास्त्रज्ञों ने 'रस' कहा है; या जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित होकर मन के अन्दर एक असाधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है, तब उसे 'रस' कहते हैं। हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने सप्तस्वरों के रस इस प्रकार बताए हैं -

सा, रे - वीर, रौद्र तथा अद्भुत रसों के पोषक है।

ध - वीभत्स तथा भयानक रसों के पोषक हैं।

ग, नि - करूण रस के पोषक हैं।

म, प - हास्य व श्रृंगार रसों के पोषक हैं।

भारतीय चिंतकों ने सौन्दर्य की चर्चा रसानुभूति से की है। भट्ट लोल्लट ने स्थायी भाव की लौकिक अनुभूति को सौन्दर्यानुभूति बताया हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि भारतीय संगीत में सौन्दर्य का लक्ष्यबिन्दु सुंदरता न होकर 'रस' है। जिस प्रकार स्वरों द्वारा रस की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार नृत्य तथा ताल के द्वारा भी हमें विभिन्न प्रकार के रस प्राप्त होते हैं। एक सफल नर्तक अपने नृत्य में विभिन्न प्रकार के भावों द्वारा रसोत्पादन करने में सफल होता है; जैसे- तांडव नृत्य से वीर रस तथा रौद्र रस, लास्य नृत्य से श्रृंगार रस तथा नृत्य की विभिन्न भाव-भंगिमाओं द्वारा श्रृंगार, हास्य, करूण और शांत रसों की उत्पत्ति सफलतापूर्वक किया जाता है। यहाँ पर न स्वर है, न शब्द है फिर भी रस-सृष्टि होती है। यही भारतीय संगीत का सौन्दर्य है और विशेषता भी है। इस प्रकार गायन, वादन और नर्तन में स्वर, लय और ताल के सौन्दर्य से समस्त रसों की सृष्टि सम्भव है।

निष्कर्ष

इस प्रकार निष्कर्षत: यह प्रतित होता है कि यद्यपि शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त स्वरों में रस भाव का संचरण तो अवश्य होता है किन्तु रस का वास्तविक रूप अथवा पूर्ण अनुभव विभिन्न स्वरों के समन्यवय में ही होता है। रसों के स्थायी भाव संगीत के स्वरों में गाये जाते है। राग गायन से पूर्ण जातियाँ ही विभिन्न रसों की आवतारण करती थी और उन्हीं के माध्यम से रस की सृष्टि की जाती थी। कालान्तर में रागों ने यह स्थान ले लिया। तथापि राग किसी न किसी विशेष रस संचरण करता है और इस रसश्री की उपलब्धि में मानव अपने आपको विस्मृत कर देता है। आकाशवाणी से प्रसारित वार्ता में श्री सुमित्रा नन्दन पंत जी के यह पूछने पर कि'' विशेष रस के लिए विशेष रागिनियाँ होती है। क्या यह सत्य है?' पं0 ओंकारनाथ ठाकुर ने भी सही कहा था कि 'यह नितान्त सत्य है।' प्रत्येक राग विशेष इस के लिए होता है। प्रकृति से पाई हुई यह बात है पर उच्चारण भेद से, आवाज की लगाव से, उसकी फ्रीकवन्सी भिन्न-भिन्न रेखों के द्वारा भिन्न-भिन्न परिणाम आ सकते है।

संदर्भ

डॉ0 सिंह ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च एकेडमी, कलकत्ता, 1994
प्रो0 शर्मा स्वतंत्र, भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2014
डॉ0 कुमारी शिप्रा, भारतीय संगीत में सौन्दर्य और अध्याप्तम, मनीष प्रकाशन, वाराणसी, 2011
डॉ0 कालरा श्रुति, सौन्दर्य शास्त्र् के मूलाधार, कनिष्क पब्लिशिर्स, डिस्ट्रीव्यूटर्स, 2011
भटनागर मधुरलता, भारतीय संगीत का सौन्दर्य विधान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1994
प्रो0 (डॉ0) जौहरी रेनू, संगीत एवं अन्य ललित कलाओं में रस एवं सौन्दर्य, राष्ट्रीय संगोष्ठी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2021
प्रो0 शर्मा स्वतंत्र, सौन्दर्य रस एवं संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2015